Journal of Science and Research Innovations

Volume - 4, Issue - 1, June 2026 ISSN: 2583-9004 (ONLINE)

Received: 20-04-2026 **Revised**: 22-04-2026 **Accepted**: 24-04-2026

अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 का विश्लेषणात्मक अध्ययन, त्यौंथर तहसील के विशेष संदर्भ में

डॉ. आशीष बृज (विभागाध्यक्ष), उदय प्रकाश मिश्र (शोधार्थी)

विधि विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा- 486003, रीवा (म. प्र.), भारत

सार (Abstract)

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989, भारतीय संसद द्वारा पारित एक ऐतिहासिक सामाजिक विधि है, जिसका उद्देश्य भारतीय समाज के सबसे वंचित वर्गों को जाति व्यवस्था में निहित भेदभाव, हिंसा और शोषण से व्यापक सुरक्षा प्रदान करना है। यह शोधपत्र अधिनियम की विधायी उत्पत्ति, संवैधानिक आधार, मूल अपराध, प्रक्रियात्मक संरचना, न्यायिक व्याख्या और कार्यान्वयन संबंधी चुनौतियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के विवरण, सुभाष काशीनाथ महाजन बनाम महाराष्ट्र राज्य (2018) और पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ (2020) जैसे सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णयों, 2015 और 2018 के संशोधन अधिनियमों और अनुभवजन्य अपराध आंकड़ों के आधार पर, यह अध्ययन विधायी आशय और जमीनी स्तर के परिणामों के बीच मौजूद अंतर का आलोचनात्मक मूल्यांकन करता है। शोधपत्र सामाजिक न्याय

के संवैधानिक साधन के रूप में अधिनियम की प्रभावकारिता को मजबूत करने के लिए लक्षित अनुशंसाओं के एक समूह के साथ समाप्त होता है।

मुख्य शब्द: अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989, दलित, अत्याचार, अग्रिम जमानत, विशेष न्यायालय, संवैधानिक सुरक्षा उपाय, न्यायिक समीक्षा, जातिगत भेदभाव

- **<u>प्रस्तावना</u> (Introduction)**

लोकतांत्रिक भारत में जाति आधारित हिंसा का निरंतर बने रहना, समानता और मानवीय गरिमा की संवैधानिक गारंटी के लिए एक गंभीर चुनौती है। भारत की लगभग 25% आबादी का गठन करने वाले अनुसूचित जाति (एससी) और अनुसूचित जनजाति (एसटी) अनादिकाल से जातिगत व्यवस्था की पदानुक्रमिक संरचनाओं में निहित व्यवस्थित बहिष्कार, आर्थिक शोषण और शारीरिक हिंसा का शिकार रहे हैं।[1] जातिगत अत्याचारों से निपटने में मौजूदा कानूनों की स्पष्ट अपर्याप्तता के लिए लक्षित विधायी प्रतिक्रिया के रूप में, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (जिसे आगे "अधिनियम" कहा गया है) को 11 सितंबर 1989 को अधिनियमित किया गया था।[2]

यह अधिनियम दंडात्मक, निवारक और पुनर्वास उद्देश्यों का संगम है। यह अत्याचारों की एक व्यापक सूची को परिभाषित और अपराध घोषित करता है, विशेष न्याय प्रणाली का निर्माण करता है, और पीड़ितों की राहत और पुनर्वास को अनिवार्य बनाता है। फिर भी, इसके लागू होने के दशकों बाद भी, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदायों के खिलाफ अत्याचारों की घटनाएं चिंताजनक संख्या में सामने आ रही हैं, जिससे विधायी पाठ के सामाजिक वास्तविकता में रूपांतरण के बारे में गंभीर प्रश्न उठते हैं।[3] सुभाष काशीनाथ महाजन (2018) मामले में सर्वोच्च न्यायालय का विवादास्पद फैसला, उसके बाद पारित संशोधन अधिनियम 2018 और पृथ्वी राज चौहान (2020) मामले में दिया गया फैसला, इन सभी ने मिलकर एक जटिल न्यायिक परिदृश्य का निर्माण किया है, जिसके लिए सावधानीपूर्वक विश्लेषणात्मक अध्ययन की आवश्यकता है।

---

[1] The Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989 (Act 33 of 1989), Preamble; Naveen Kumar, "A Study about SC & ST Prevention of Atrocities Act," Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education, Vol. 16, Issue No. 5 (April 2019), p. 870.

[2] Pranabindu Acharya & Prachi Acharya, "An Analysis of the Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989" (SSRN Working Paper No. 3732709), p. 1.

[3] National Crime Records Bureau (NCRB), Crime in India (annual); P.S. Krishnan, "Atrocities against Dalits: Retrospect and Prospect," Combat Law, Vol. 8, Issues 5–6 (2009), p. 12.

- **<u>एतिहासिक पृष्ठभूमि एवं संवैधानिक आधार</u>**

इस अधिनियम के लिए संवैधानिक दायित्व कई प्रावधानों के समूह से प्राप्त होता है। अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता के सभी रूपों को समाप्त करता है और इसके अभ्यास को दंडनीय अपराध बनाता है। अनुच्छेद 46 राज्य को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को सामाजिक अन्याय और शोषण से बचाने का निर्देश देता है। अनुच्छेद 338 और 338-ए क्रमशः राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना करते हैं, जिन्हें संवैधानिक सुरक्षा उपायों की निगरानी करने का दायित्व सौंपा गया है।[4]

इस अधिनियम के विधायी पूर्ववृत्त लगातार सामाजिक विफलता से प्रेरित क्रमिक कानूनी विस्तार का एक पैटर्न दर्शाते हैं। अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 स्वतंत्रता के बाद अनुच्छेद 17 को लागू करने वाला पहला अधिनियम था, लेकिन इसका दायरा सीमित था और इसके प्रवर्तन तंत्र कमजोर थे। नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1976 ने अस्पृश्यता से संबंधित अपराधों की परिभाषा का विस्तार किया, लेकिन दलित और आदिवासी समुदायों द्वारा नियमित रूप से झेली जाने वाली व्यापक अत्याचारों जैसे कि सामूहिक हिंसा, यौन शोषण और आर्थिक उत्पीड़न इत्यादि को संबोधित करने में अपर्याप्त रहा।[5]

वर्ष 1989 के इस अधिनियम के लिए तात्कालिक विधायी प्रेरणा संगठित नरसंहारों की एक श्रृंखला से मिली। उदाहरणार्थ; किझावेनमणि, तमिलनाडु (1968), जहां न्यूनतम मजदूरी की मांग करने पर 44 अनुसूचित जाति के कृषि मजदूरों को जिंदा जला दिया गया था; बेलची, बिहार (1977); और करमचेडू, आंध्र प्रदेश (1984), जहां पांच अनुसूचित जातियों की हत्या कर दी गई थी इत्यादि अन्य घटनाएँ भी जिनमें मौजूदा कानूनी तंत्र न्याय दिलाने में व्यवस्थित रूप से विफल रहा था।[6] अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के विवरण में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि पीसीआरए और भारतीय दंड संहिता गैर-अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों द्वारा किए गए "अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदायों के खिलाफ अपराधों को रोकने और हतोत्साहित करने में अपर्याप्त" पाए गए थे, और इसलिए नए, अधिक कठोर कानून की आवश्यकता थी।[7]

[4] Constitution of India, Arts. 17, 46, 338, 338-A.
[5] Protection of Civil Rights Act, 1976 (Act 22 of 1976); NHRC, Report on Prevention of Atrocities against SCs (New Delhi), pp. 14–15.
[6] Kumar, op. cit., p. 872; Acharya & Acharya, op. cit., p. 2.
[7] National Commission for SCs, First Report 2004–05 (New Delhi, 2006), pp. 222–23; Statement of Objects and Reasons, SC/ST (POA) Act, 1989.

अनुसंधान की सीमाएँ (Research Limitations): प्रत्येक अनुभवजन्य (empirical) तथा सिद्धांतात्मक (doctrinal) अध्ययन कुछ सीमाओं के अंतर्गत संचालित होता है, और बौद्धिक ईमानदारी की दृष्टि से इनका स्पष्ट उल्लेख आवश्यक है। वर्तमान अनुसंधान में कुछ सीमाएँ पहचानी गई हैं। इस अध्ययन के अंतर्गत क्षेत्राधारित प्राथमिक आंकड़े केवल त्योंथर तहसील के पाँच ग्राम पंचायतों से संकलित किए गए हैं। यद्यपि यह नमूना सूक्ष्म-स्तरीय (micro-level) पर महत्वपूर्ण और विस्तृत दृष्टिकोण प्रदान करता है, तथापि यह मध्य प्रदेश के एक जिले की एक तहसील तक सीमित है। नमूना आकार में प्राथमिक सर्वेक्षण 100 उत्तरदाताओं के नमूने पर आधारित था, जिन्हें पाँच हितधारक श्रेणियों में समान रूप से विभाजित किया गया। यद्यपि इससे प्रतिनिधिक संतुलन सुनिश्चित होता है, परंतु कुल नमूना आकार प्रतिशत-आधारित निष्कर्षों की सांख्यिकीय दृढ़ता को सीमित करता है। प्रत्येक श्रेणी में 20 उत्तरदाता होने के कारण एक व्यक्ति का उत्तर भी प्रतिशत में 5 अंकों का परिवर्तन कर सकता है। अतः निष्कर्षों को सांख्यिकीय रूप से निर्णायक न मानकर, समुदाय की धारणा के संकेतक (directional indicators) के रूप में देखा जाना चाहिए।

- **<u>शोध समस्या और परिकल्पना</u> (Research Problem & Hypothisis)**

इस शोध पत्र की केंद्रीय शोध समस्या यह है: एक व्यापक विधायी ढांचे के बावजूद, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदायों के खिलाफ अत्याचार क्यों जारी रहते हैं, और विधायी इरादे और जमीनी परिणामों के बीच अंतर के लिए कौन से संरचनात्मक, संस्थागत और न्यायशास्त्रीय कारक जिम्मेदार हैं?

परिकल्पना (H_1): अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 संरचनात्मक रूप से पर्याप्त है, लेकिन इसके कार्यान्वयन में मूलभूत खामियां हैं। इसका कारण वैधानिक प्रवर्तन, अभियोजन और न्यायिक ढांचे में संस्थागत विफलताएं हैं, साथ ही आपराधिक न्याय प्रणाली के हर स्तर पर उच्च जाति के हितों का सामाजिक-राजनीतिक वर्चस्व भी है। अधिनियम के व्यापक दुरुपयोग का वर्णन अनुभवजन्य रूप से अतिरंजित है और इसके सुरक्षात्मक प्रावधानों को संरचनात्मक रूप से कमजोर करने का औचित्य सिद्ध नहीं करता है।

परिकल्पना (H_2): न्यायिक हस्तक्षेप जो अधिनियम के प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों को कम करते हैं, विरोधाभासी रूप से झूठे आरोप को रोकने के बजाय जातिगत दण्ड मुक्ति को मजबूत करते हैं, जिससे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 17 और 21 के संवैधानिक उद्देश्य विफल हो जाते हैं।

- **अनुसंधान पद्धति और डाटा संग्रह**

यह अध्ययन सैद्धांतिक और अनुभवजन्य अनुसंधान पद्धति के संयोजन को अपनाता है, और विश्लेषणात्मक कठोरता और प्रमाणिक विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के डाटा स्रोतों का उपयोग करता है।

1. प्राथमिक डाटा : इस शोध में जिन प्राथमिक स्रोतों का संदर्भ लिया गया है, उनमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 और इसके संशोधन अधिनियम 2015 और 2018; अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995; मूल विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों का विवरण; विधेयक प्रस्तुत किए जाने के समय लोकसभा में हुई संसदीय बहसें; भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 17, 21, 46, 338 और 338-ए सहित संवैधानिक प्रावधान; और सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णयों का पूर्ण पाठ, विशेष रूप से सुभाष काशीनाथ महाजन बनाम महाराष्ट्र राज्य और पृथ्वी राज चौहान बनाम यूनियन ऑफ इंडिया जैसे निर्णय शामिल हैं। ये प्राथमिक स्रोत इस शोध पत्र के खंड II, III और IV में किए गए सैद्धांतिक विश्लेषण का आधार बनते हैं, जिससे अधिनियम के विधायी आशय, वैधानिक भाषा और न्यायिक व्याख्या की प्रत्यक्ष और प्रामाणिक जांच संभव हो पाती है।

2. द्वितीयक डाटा : अधिनियम के वास्तविक संचालन को समझने और उसका आलोचनात्मक मूल्यांकन करने के लिए द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। इनमें राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो (NCRB) द्वारा प्रकाशित वार्षिक अपराध आँकड़े शामिल हैं, जो 'क्राइम इन इंडिया' रिपोर्ट में दर्ज अत्याचार मामलों, आरोप पत्र दाखिल करने की दर, दोषसिद्धि दर और राज्यवार अपराध वितरण पर मात्रात्मक डेटा प्रदान करते हैं। अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अत्याचारों पर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC) और राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग (प्रथम रिपोर्ट 2004-05) की रिपोर्टें कार्यान्वयन विफलताओं का संस्थागत आकलन प्रस्तुत करती हैं। इसके अलावा कुछ अन्य साहित्य-समीक्षा एवं शोध-पत्र का अध्ययन उदाहरणार्थ; स्मृति शर्मा का जाति-आधारित घृणा अपराधों का अर्थमितीय विश्लेषण (दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, 2013), ज्योति गुंटका का आंध्र प्रदेश में अधिनियम के प्रभाव का क्षेत्र-आधारित अध्ययन (2014), और नवीन कुमार का अधिनियम के प्रावधानों का सर्वेक्षण (2019) शामिल हैं। बिन्दु क्रमांक V और VI में कार्यान्वयन और दुरुपयोग विश्लेषण के लिए अनुभवजन्य आधार प्रदान करते हैं। संसदीय समिति की रिपोर्टों और राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग (NSC) के निष्कर्षों का उपयोग निगरानी दायित्वों के अनुपालन का आकलन करने के लिए किया गया है। ये द्वितीयक स्रोत मिलकर एक त्रिकोणीय

विश्लेषण को सक्षम बनाते हैं जो शाब्दिक व्याख्या से परे जाकर अधिनियम का मूल्यांकन एक जीवंत सामाजिक साधन के रूप में करता है जो जटिल संस्थागत और राजनीतिक वातावरण में कार्य करता है।

3. क्षेत्रीय अध्ययन: सैद्धांतिक विश्लेषण के अतिरिक्त, इस अध्ययन में त्यौथर तहसील की पाँच ग्राम पंचायतों से एकत्रित किए गए क्षेत्र-आधारित प्राथमिक आँकड़ों को शामिल किया गया है, जो अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के अत्याचार मामलों की जमीनी हकीकत और अधिनियम के संचालन के संबंध में समुदाय की धारणाओं को दर्शाते हैं। नमूना समूह, उत्तरदाताओं की प्रोफ़ाइल और प्रमुख अनुभवजन्य निष्कर्ष नीचे प्रस्तुत किए गए हैं।

- **नमूना फ्रेम: ग्राम पंचायत-वार जनसंख्या**

निम्नलिखित पांच ग्राम पंचायतों से आंकड़े एकत्र किए गए, जिनकी कुल जनसंख्या 7,040 है:

ग्राम पंचायत	महिला	पुरुष	कुल जनसंख्या
अंजोरा	1045	979	2024
मालपार	409	350	759
राजापुर	810	914	1724
गोपालपुर्वा	267	278	545
अमिलकोनी	913	1075	1988
कुल	**3,444**	**3,596**	**7,040**

नमूना समूह से कुल 100 उत्तरदाताओं का चयन किया गया, जिन्हें पांच उत्तरदाता श्रेणियों (तालिका 2) में समान रूप से वितरित किया गया, जिससे अत्याचार न्याय प्रणाली में सभी हितधारकों का संतुलित और निष्पक्ष प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।

तालिका 1: उत्तरदाताओं का सामाजिक वर्ग के आधार पर वर्गीकरण

(स्वसर्वेक्षण पर आधारित)

सामाजिक वर्ग	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत (%)
अनुसूचित जाति (एससी)	30	30%
अनुसूचित जनजाति (एसटी)	20	20%
अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी)	25	25%
सामान्य श्रेणी	25	25%
कुल	**100**	**100%**

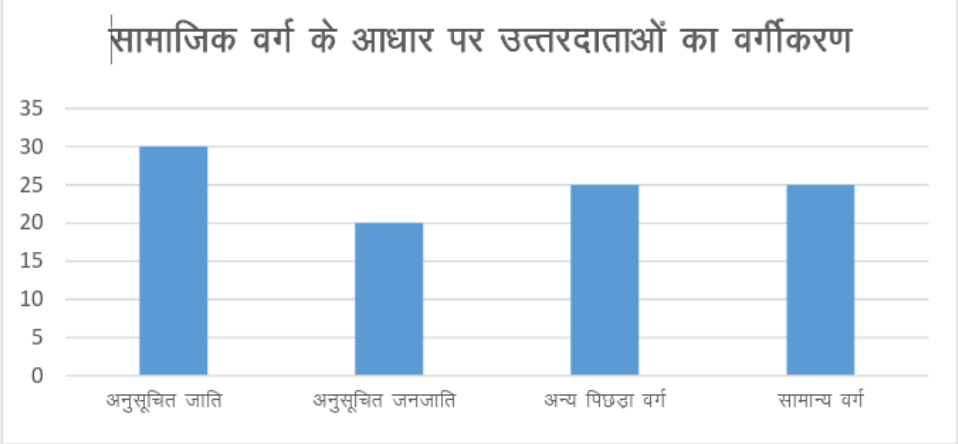

इस अध्ययन में सभी प्रमुख सामाजिक वर्गों को शामिल किया गया है। अनुसूचित जाति (SC) के उत्तरदाताओं (30%) का प्रतिनिधित्व सबसे अधिक है, क्योंकि SC/ST अधिनियम सीधे तौर पर इसी समुदाय से जुड़ा है। SC, ST, OBC और सामान्य वर्ग सभी पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व करते हैं, जिससे अध्ययन का संतुलन बना रहता है।

तालिका 2: उत्तरदाताओं का श्रेणीवार वर्गीकरण (स्वसर्वेक्षण पर आधारित)

वर्ग	संख्या	प्रतिशत (%)
पीड़ितों	20	20%
आरोपी	20	20%
पुलिस अधिकारी	20	20%
वकीलों	20	20%
सामान्य जनता	20	20%
कुल	**100**	**100%**

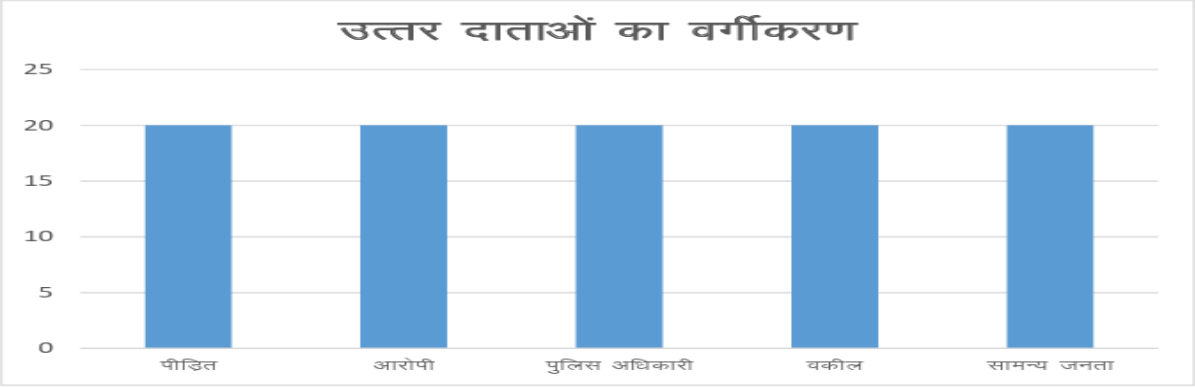

सभी 100 उत्तरदाताओं को पाँच श्रेणियों में समान प्रतिनिधित्व दिया गया, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि डेटा संतुलित और निष्पक्ष है। सभी हितधारक समूहों में समान वितरण डेटा को सांख्यिकीय तटस्थता और विश्वसनीयता प्रदान करता है।

तालिका 3: अधिनियम के दुरुपयोग पर राय (श्रेणीवार)
(स्वसर्वेक्षण एवं उत्तरदाताओं की राय पर आधारित)

वर्ग	हाँ (%)	नहीं (%)	कह नहीं सकते (%)	कुल (%)
पीड़ितों	30	50	20	100
आरोपी	70	10	20	100
पुलिस अधिकारी	60	20	20	100
वकीलों	55	25	20	100
सामान्य जनता	50	30	20	100

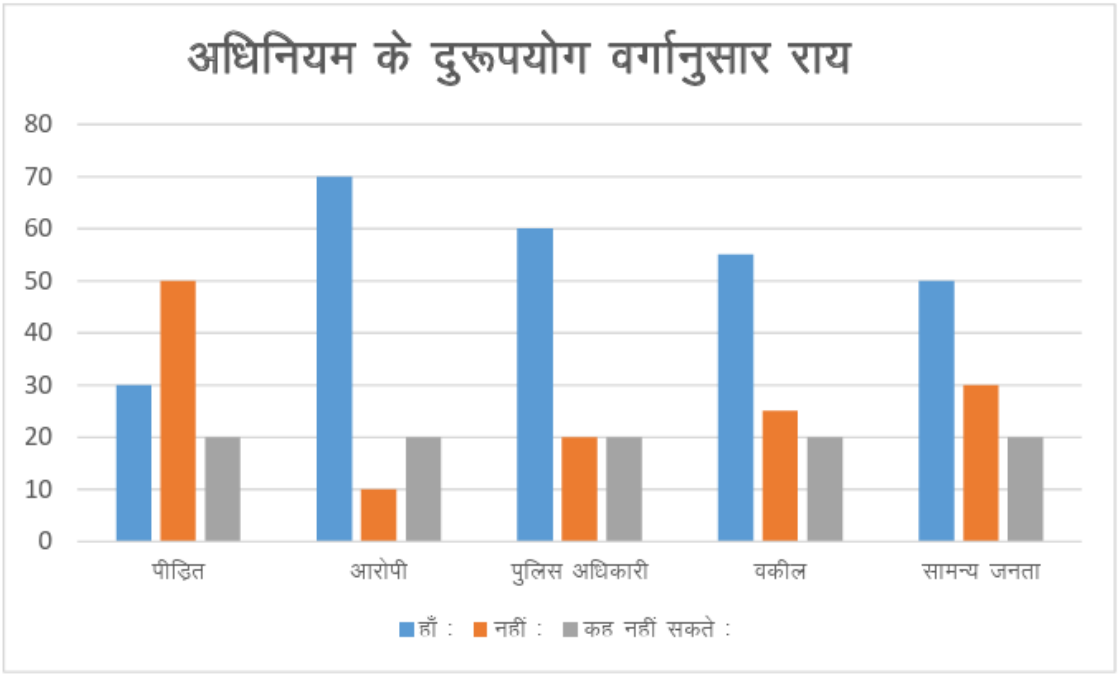

अधिकांश आरोपी (70%) और पुलिस अधिकारी (60%) मानते हैं कि अधिनियम का दुरुपयोग किया जा रहा है, जबकि पीड़ितों में से केवल 30% ही इस विचार से सहमत हैं। इससे स्पष्ट होता है कि न्याय प्रणाली में प्रतिवादी की स्थिति के अनुसार दुरुपयोग की धारणा में काफी भिन्नता है। दृष्टिकोण में यह भिन्नता इस बात को रेखांकित करती है कि "दुरुपयोग" की कहानी मुख्य रूप से पीड़ित समुदाय के भीतर से नहीं बल्कि बाहर से गढ़ी जाती है। यह निष्कर्ष इस शोधपत्र के छठे खंड में प्रस्तुत सैद्धांतिक आलोचना की पुष्टि करता है।

तालिका 4: न्याय प्राप्ति की स्थिति (पीड़ित और आरोपी)
(स्वसर्वेक्षण एवं उत्तरदाताओं की राय पर आधारित)

वर्ग	न्याय प्राप्ति (%)	न्याय नहीं मिला (%)	मामला लंबित (%)
पीड़ितों	40	30	30
आरोपी	30	40	30

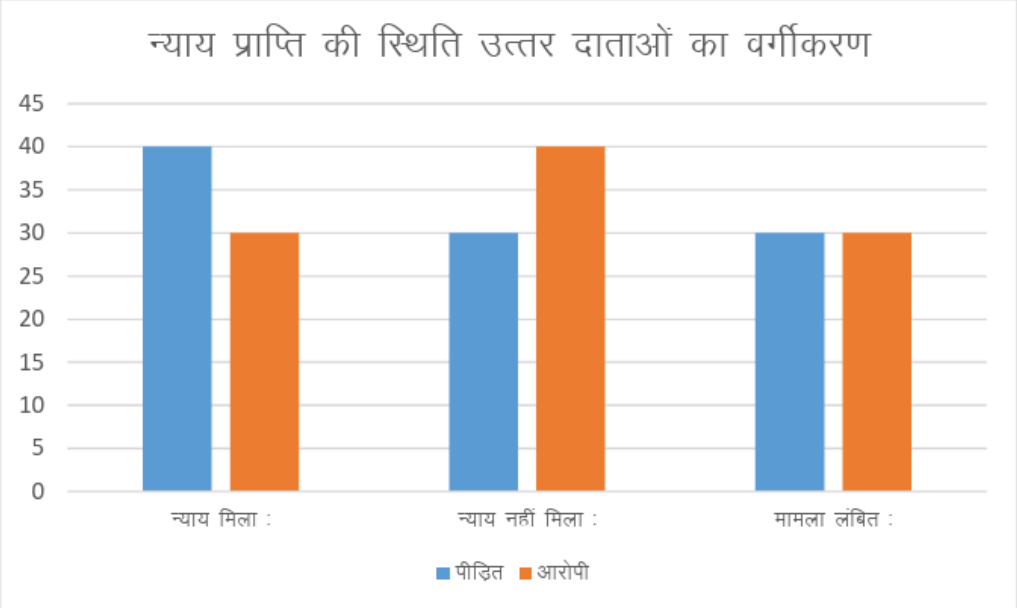

केवल 40% पीड़ितों ने न्याय मिलने की बात कही, जबकि 30% को न्याय नहीं मिला और 30% मामले अभी भी लंबित हैं। यह निष्कर्ष खंड V में बताई गई कार्यान्वयन संबंधी कमियों की पुष्टि करता है। अधिकांश अत्याचार पीड़ितों को अभी भी प्रभावी न्यायिक निवारण से वंचित रखा जा रहा है, जो न्याय वितरण प्रणाली की धीमी गति और इसकी संरचनात्मक चुनौतियों को दर्शाता है।

तालिका 5: पुलिस जांच की कथित निष्पक्षता
(स्वसर्वेक्षण एवं उत्तरदाताओं की राय पर आधारित)

वर्ग	निष्पक्ष (%)	पक्षपाती (%)	आंशिक रूप से (%)	कुल (%)
पीड़ितों	35	40	25	100
आरोपी	25	50	25	100
पुलिस अधिकारी	70	10	20	100
वकीलों	45	30	25	100
सामान्य जनता	40	35	25	100

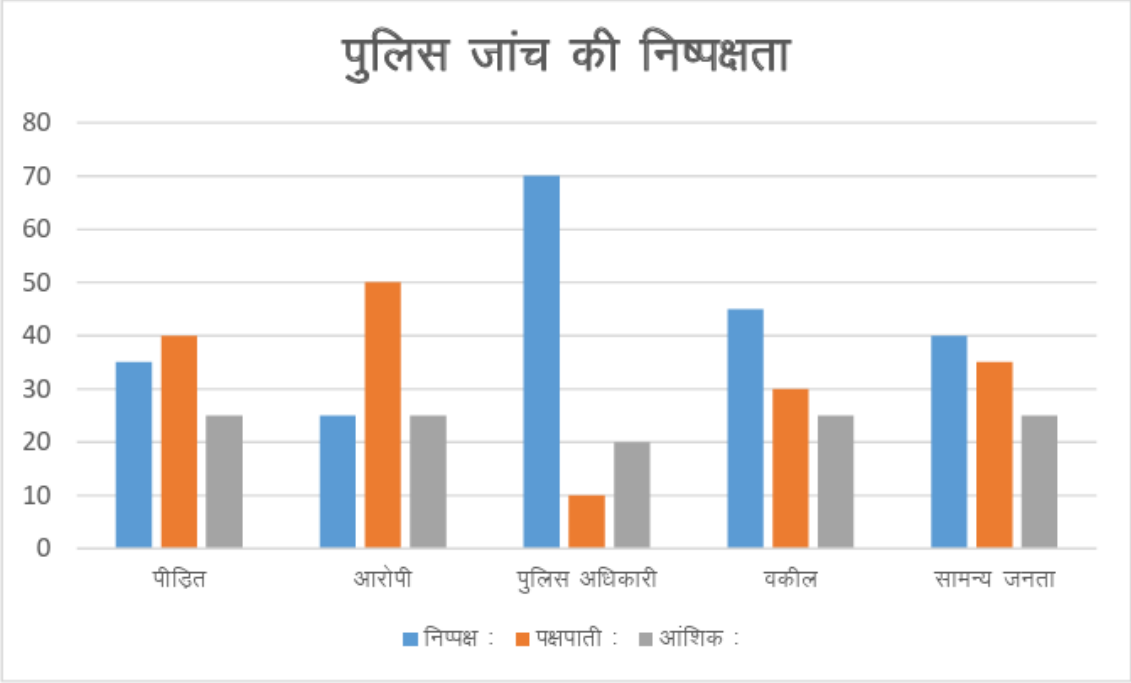

पुलिस अधिकारी अपनी जांच को 70% निष्पक्ष मानते हैं, जबकि आरोपी व्यक्ति इसे 50% पक्षपातपूर्ण बताते हैं, और यहां तक कि पीड़ित भी 40% पुलिस पक्षपात की शिकायत करते हैं। संस्था की आत्म-धारणा और संस्था के अधीन लोगों की धारणा के बीच यह "विश्वास का अंतर" एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष है, जो खंड V में विश्लेषित पुलिस की उदासीनता और जातिगत पूर्वाग्रह की प्रलेखित समस्या के अनुरूप है।

तालिका 6: अधिनियम में संशोधन की आवश्यकता पर राय
(स्वसर्वेक्षण एवं उत्तरदाताओं की राय पर आधारित)

वर्ग	हाँ (%)	नहीं (%)	अनिश्चितता (%)	कुल (%)
पीड़ितों	40	40	20	100
आरोपी	75	10	15	100
पुलिस अधिकारी	60	20	20	100
वकीलों	65	15	20	100
सामान्य जनता	55	25	30	100

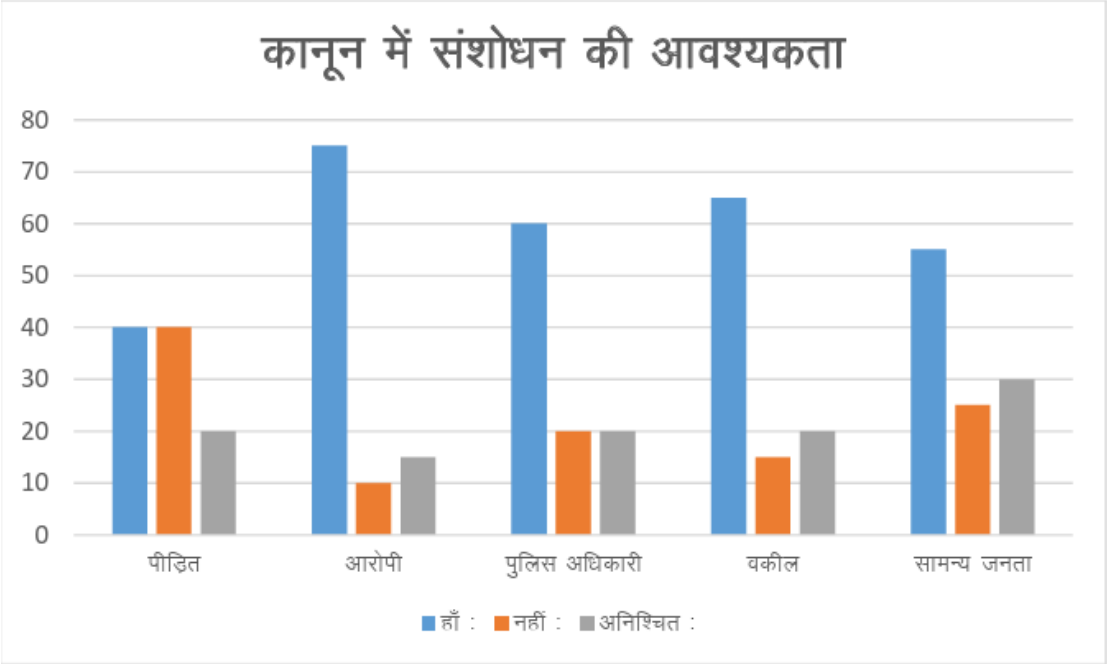

अधिकांश उत्तरदाताओं विशेषकर आरोपियों (75%) और वकीलों (65%) ने अधिनियम में संशोधन का समर्थन किया। गौरतलब है कि पीड़ितों की राय लगभग बराबर बंटी हुई है (40% हां, 40% नहीं), जो उनकी दुविधा को दर्शाती है: अधिनियम द्वारा प्रदान की गई सुरक्षा से असंतुष्ट लोग अधिक सशक्त प्रावधान चाहते हैं, जबकि अन्य को डर है कि संशोधन इसे और कमजोर कर सकते हैं। यह निष्कर्ष इस बात पर प्रकाश डालता है कि किसी भी सुधार को अत्याचारों के आरोपियों की चिंताओं से प्रेरित होने के बजाय पीड़ित-केंद्रित होना चाहिए।

- **क्षेत्रीय अध्ययन के निष्कर्ष: परिकल्पना के परिणाम**

1. **परिकल्पना H_1 (आंशिक रूप से सिद्ध):**जमीनी आंकड़ों से पुष्टि होती है कि अधिनियम संरचनात्मक रूप से सुदृढ़ है, लेकिन संचालन में कमज़ोर है। केवल 40% पीड़ितों को न्याय मिला, जो कार्यान्वयन विफलता की परिकल्पना की पुष्टि करता है। हालांकि, आंकड़े यह भी दर्शाते हैं कि व्यापक दुरुपयोग की धारणा सभी में समान रूप से प्रचलित नहीं है, केवल 30% पीड़ित (आरोपियों के 70% की तुलना में) दुरुपयोग को समझते हैं, जो दर्शाता है कि "दुरुपयोग" का वर्णन काफी बढ़ा-चढ़ाकर किया गया है। अतः H_1 आंशिक रूप से सिद्ध होता है: कार्यान्वयन की कमज़ोरियाँ स्पष्ट रूप से स्थापित हैं, लेकिन वर्णित दुरुपयोग का आयाम पीड़ित पक्ष के आंकड़ों द्वारा पूरी तरह से समर्थित नहीं है।

2. **परिकल्पना H_2 (उपलब्ध आंकड़ों द्वारा सिद्ध नहीं):**हालांकि आंकड़े न्याय वितरण में असंतोष और प्रणाली में देरी को दर्शाते हैं, लेकिन न्यायिक हस्तक्षेपों (जैसे सुभाष काशीनाथ महाजन के निर्देश) और जमीनी स्तर पर जातिगत दंडमुक्ति में वृद्धि के बीच प्रत्यक्ष कारण-कार्य संबंध स्थापित नहीं करते हैं। इसलिए, उपलब्ध प्राथमिक आंकड़ों के आधार पर H_2 सिद्ध नहीं हो सका, हालांकि खंड IV में सैद्धांतिक विश्लेषण इसके अंतर्निहित तर्क का समर्थन करता है।

- **<u>प्रावधानों की प्रमुख विशेषताएं और आलोचनात्मक विश्लेषण</u>**

1. <u>अपराधों की परिभाषा एवं दायरा</u>

इस अधिनियम के मूल प्रावधानों को तीन कार्यात्मक श्रेणियों में व्यवस्थित किया गया है: (i) अत्याचारों को परिभाषित करने और दंडित करने वाले आपराधिक कानून प्रावधान; (ii) पीड़ितों के लिए राहत और मुआवजा तंत्र; और (iii) कार्यान्वयन और निगरानी के लिए विशेष प्राधिकरण। यह त्रिपक्षीय संरचना इस बात की स्वीकृति को दर्शाती है कि केवल आपराधिक अभियोजन ही अपर्याप्त है, सामाजिक कानून में प्रतिशोध के साथ-साथ पुनर्वास को भी शामिल किया जाना चाहिए।[8]

धारा 3, जो अधिनियम का मूल भाग है, में मूल रूप से 22 विशिष्ट अपराधों का उल्लेख किया गया है, जिनमें अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्य को अखाद्य पदार्थों का सेवन करने के लिए मजबूर करना, सार्वजनिक रूप से उनका अपमान करना और उनकी भूमि से उन्हें बेदखल करना शामिल है। इसकी एक प्रमुख संरचनात्मक विशेषता यह है कि यह अधिनियम केवल गैर-अनुसूचित जनजाति/अनुसूचित जनजाति व्यक्ति द्वारा अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्य के

[8] Acharya & Acharya, op. cit., p. 3; Kumar, op. cit., p. 871.

विरुद्ध किए गए अपराधों पर लागू होता है; अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति व्यक्तियों के बीच अंतर-सामुदायिक अपराध इसके दायरे से बाहर हैं।[9] यह डिजाइन उस समाजशास्त्रीय वास्तविकता को दर्शाता है कि अत्याचार मूल रूप से सामाजिक रूप से शक्तिशाली लोगों द्वारा अधीनस्थ लोगों पर प्रभुत्व स्थापित करने का एक तरीका है, न कि अंतर-व्यक्तिगत हिंसा की एक सममित श्रेणी।

2. विशेष न्यायालय, अभियोजन और निगरानी

धारा 14 अधिनियम के अंतर्गत अपराधों के त्वरित निपटारे के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना अनिवार्य करती है, जबकि धारा 15 विशेष लोक अभियोजकों की नियुक्ति का प्रावधान करती है। 2015 के संशोधन ने इन्हें जिला स्तर पर अनन्य विशेष न्यायालयों में परिवर्तित कर दिया, जिन्हें बहस समाप्त होने के दो महीने के भीतर मामलों का निपटारा करने का वैधानिक दायित्व सौंपा गया है।[10] यह अधिनियम राज्य सरकार को सामूहिक जुर्माना लगाने (धारा 16), अत्याचार-ग्रस्त क्षेत्रों में हथियार लाइसेंस रद्द करने और एक सुव्यवस्थित प्रशासनिक तंत्र के माध्यम से ऐसे क्षेत्रों की पहचान और निगरानी करने का अधिकार भी देता है। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 एक व्यापक निगरानी प्रणाली निर्धारित करते हैं: जिला मजिस्ट्रेटों की मासिक रिपोर्ट, त्रैमासिक जिला निगरानी एवं सतर्कता समितियाँ और मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में अर्धवार्षिक राज्य निगरानी एवं सतर्कता समितियाँ।[11]

3. राहत और पुनर्वास

धारा 17(3) और 21(2)(iii), 1995 के नियमों के नियम 11, 12 और 14 के साथ पढ़े जाने पर, तत्काल पीड़ित राहत के लिए एक ढांचा स्थापित करते हैं। जिसमें यात्रा व्यय, दैनिक भरण-पोषण भत्ता, भोजन, आश्रय, चिकित्सा सहायता और नकद मुआवजा शामिल है। साथ ही दीर्घकालिक आर्थिक और सामाजिक पुनर्वास भी शामिल है। नियम 12 जिला मजिस्ट्रेट को एफआईआर दर्ज होने के सात दिनों के भीतर तत्काल राहत की व्यवस्था करने का आदेश देता है।[12] ये प्रावधान दंडात्मक उपायों के साथ-साथ पुनर्स्थापनात्मक न्याय का एक रूप प्रस्तुत करते हैं। हालांकि, इनका कार्यान्वयन अत्यंत अपर्याप्त है: पीड़ितों को अक्सर मुआवज़ा प्राप्त करने में नौकरशाही विलंब का सामना करना पड़ता है,

[9] SC/ST (POA) Act, s. 3; Kanubhai M. Parmar v. State of Gujarat (Gujarat HC); Acharya & Acharya, op. cit., p. 4.
[10] SC/ST (POA) Act, ss. 14, 15; Amendment Act, 2015.

और राहत एवं पुनर्वास के लिए विशिष्ट बजट प्रावधान करने का राज्य सरकारों पर नियम 14 के तहत दायित्व काफी हद तक पूरा नहीं हो पाता है।

- **न्यायिक न्यायशास्त्र: संरक्षण, कमियाँ एवं सुधार :**

1. अग्रिम जमानत विवाद: (धारा 18)

इस अधिनियम का सबसे अधिक संवैधानिक रूप से विवादित प्रावधान धारा 18 है, जो अधिनियम के अंतर्गत अपराधों के आरोपी व्यक्तियों को धारा 438 सीआरपीसी के तहत अग्रिम जमानत देने पर पूर्णतः रोक लगाता है। इसका तर्क सुरक्षात्मक है: अत्याचार के मामलों में अग्रिम जमानत से आरोपी, जो आमतौर पर सामाजिक और आर्थिक रूप से प्रभावशाली समुदायों से होते हैं। हिरासत में पूछताछ से बच सकेंगे, जिससे पीड़ित की सुरक्षा और जांच की निष्पक्षता खतरे में पड़ जाएगी।[13]

सुभाष काशीनाथ महाजन बनाम महाराष्ट्र राज्य (2018) के मामले[14] मे सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने एक दूरगामी और बेहद विवादास्पद फैसला सुनाया। इसमें कहा गया कि: (i) धारा 18 के तहत अग्रिम जमानत पर रोक तब पूर्णतः लागू नहीं होती जब आरोप प्रथम दृष्टया झूठे हों; (ii) नियुक्ति प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति के बिना किसी लोक सेवक की गिरफ्तारी नहीं की जा सकती; (iii) वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक की पूर्व स्वीकृति के बिना किसी गैर-लोक सेवक की गिरफ्तारी नहीं की जा सकती; और (iv) अधिनियम के तहत एफआईआर दर्ज करने से पहले प्रारंभिक जांच अनिवार्य है। इस फैसले के बाद दलित संगठनों द्वारा राष्ट्रव्यापी विरोध प्रदर्शन हुए, दिनांक 2 अप्रैल 2018 का "भारत बंद", जिसमें कई लोगों की जान गई। भारत सरकार ने पुनर्विचार याचिका दायर की, और तीन न्यायाधीशों की पीठ ने भारत सरकार बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में पूर्व स्वीकृति और प्रारंभिक जांच संबंधी निर्देशों को वापस ले लिया और निरस्त कर दिया।[15]

संसद ने तुरंत 2018 का संशोधन अधिनियम पारित किया, जिसमें धारा 18ए जोड़ी गई, जो स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करती है कि: (i) एफआईआर दर्ज करने से पहले किसी प्रारंभिक जांच की आवश्यकता नहीं है; (ii) गिरफ्तारी के लिए किसी प्राधिकरण की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है; और (iii) धारा 18 के तहत रोक "किसी भी न्यायालय के किसी भी निर्णय या आदेश के बावजूद" लागू होती है।[16] पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ (2020) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 18ए की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा।[17] जिसमें यह माना गया कि धारा 438 सीआरपीसी इस अधिनियम के अंतर्गत

[13] SC/ST (POA) Act, s. 18; Acharya & Acharya, op. cit., p. 8.
[14] Subhash Kashinath Mahajan v. State of Maharashtra & Ors., (2018) 6 SCC 454.
[15] Union of India v. State of Maharashtra, (2018) 6 SCC 454 (Review); Kumar, op. cit., p. 872.
[16] SC/ST (Prevention of Atrocities) Amendment Act, 2018 (Act 27 of 2019), inserting s. 18A.
[17] Prathvi Raj Chauhan v. Union of India, WP (C) No. 1016 of 2018 (decided 10 February 2020); Acharya & Acharya, op. cit., pp. 9–10.

आने वाले मामलों पर लागू नहीं होगी। हालांकि, बहुमत ने स्पष्ट किया कि न्यायालयों के पास धारा 482 सीआरपीसी के तहत प्रक्रिया के स्पष्ट दुरुपयोग के असाधारण मामलों में कार्यवाही को रद्द करने की अंतर्निहित शक्ति है। यह एक ऐसा प्रावधान है, जिसके दायरे की सावधानीपूर्वक निगरानी की आवश्यकता है ताकि न्यायिक शक्ति का पुन: अवमूल्यन न हो।

2. सुभाष काशीनाथ महाजन मामले के निर्णय की आलोचना

इस मामले के फैसले की तथ्यात्मक और संवैधानिक दोनों आधारों पर व्यापक आलोचना की गई है। तथ्यात्मक रूप से, न्यायालय ने अत्याचार के मामलों में बरी होने के सुस्थापित वैकल्पिक कारणों जैसे आर्थिक और सामाजिक दबाव के कारण गवाहों की शत्रुता, खराब जांच और अभियोजन पक्ष की विफलताओं को ध्यान में रखे बिना, व्यापक रूप से झूठे मामलों का निष्कर्ष निकालने के लिए बरी होने के आंकड़ों पर भरोसा किया।[18] संवैधानिक रूप से, गिरफ्तारी के लिए पूर्व एसएसपी की मंजूरी की आवश्यकता ने अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के पीड़ितों के खिलाफ अपराधों के लिए एक अलग प्रक्रियात्मक बोझ पैदा किया। एक ऐसा बोझ जो गंभीर अपराध की किसी अन्य श्रेणी के संबंध में नहीं लगाया गया है। जिसे अनुच्छेद 14 की समान संरक्षण की गारंटी के साथ सामंजस्य बिठाना मुश्किल है।[19]

- **कार्यान्वयन संबंधी चुनौतियाँ: एक अनुभवजन्य अवलोकन**

इस अधिनियम के कार्यान्वयन का प्रत्यक्ष प्रमाण लगातार चिंताजनक स्थिति प्रस्तुत करता है। 1995-2007 के दौरान, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदायों के विरुद्ध प्रति वर्ष औसतन 33,596 अपराध दर्ज किए गए, यानी प्रतिदिन औसतन 93 अपराध। फिर भी, इसी अवधि में, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति व्यक्तियों के विरुद्ध कुल अपराधों में से एक तिहाई से भी कम (30.7%) अपराध ही कानूनी अधिकार अधिनियम के विशिष्ट प्रावधानों के अंतर्गत दर्ज किए गए; शेष अपराध सामान्य भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दर्ज किए गए, जिससे पीड़ितों को अधिनियम द्वारा प्रदान की गई उन्नत सुरक्षा और राहत से वंचित कर दिया गया।[20] एनसीआरबी ने आगे दर्ज किया है कि पुलिस ने 1997-2007 के दौरान अधिनियम के तहत 21.7% मामलों को बिना आरोप पत्र दाखिल किए बंद कर दिया, और जांच के तहत 1,76,397 मामलों में से केवल 97,341 मामलों में ही आरोप पत्र प्रस्तुत किए गए।[21]

[18] Nitish Nawsagaray, "Misuse of the Prevention of Atrocities Act," EPW, Vol. 53, Issue 22 (2 June 2018).
[19] Constitution of India, Art. 14; Dr. Neha Bhartiya, "SC/ST (Prevention of Atrocities) Act 1989: Tool for Social Justice or Weapon of Vengeance," International Journal of Development Research, Vol. 8 (2018).
[20] Kumar, op. cit., p. 870; Krishnan, op. cit., p. 12.
[21] NCRB statistics cited in Kumar, op. cit., p. 870.

समय के साथ अपराध की स्थिति और भी खराब होती गई है: अनुसूचित जातियों के खिलाफ अपराध 2012 में 33,655 से बढ़कर 2013 में 39,408 हो गए, और इसी अवधि में अनुसूचित जनजातियों के खिलाफ अपराध 5,922 से बढ़कर 6,793 हो गए।

गवाहों के मुकर जाने की समस्या कार्यान्वयन की विफलताओं को और भी बढ़ा देती है। करमचेदु हत्याकांड (1984), त्सुंदुरु हत्याकांड (1991), और बिहार में हुए बाथानी टोला और लक्ष्मणपुर बाथे हत्याकांड (1996-97) जैसे महत्वपूर्ण मामलों में, गवाहों के धमकी और आर्थिक दबाव में मुकर जाने के बाद निचली अदालतों द्वारा दिए गए फैसलों को उच्च न्यायालयों ने पलट दिया। कंबलापल्ली मामले (कर्नाटक) में, एकमात्र जीवित चश्मदीद गवाह को जान से मारने की धमकी मिलने के कारण वह मुकर गया, जिसके परिणामस्वरूप सभी आरोपियों को बरी कर दिया गया।[22] ये मामले दर्शाते हैं कि अत्याचार के मामलों में बरी होना अक्सर संस्थागत विफलता और सामाजिक दबाव का ही एक माप होता है, उतना ही जितना कि झूठी शिकायतों का संकेतक होता है।

- **<u>दुरुपयोग पर बहस: एक आलोचनात्मक मूल्यांकन</u>**

यह दावा कि इस अधिनियम का व्यवस्थित रूप से उत्पीड़न, ब्लैकमेल और राजनीतिक प्रतिशोध के लिए दुरुपयोग किया जाता है, सार्वजनिक चर्चा में नियमित रूप से उठाया गया है और विशेष रूप से सुभाष काशीनाथ महाजन मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा। इस दावे की गहन अनुभवजन्य जांच होनी चाहिए। व्यवस्थित दुरुपयोग का प्राथमिक प्रमाण उच्च बरी होने की दर है। हालांकि, यह निष्कर्ष तार्किक रूप से त्रुटिपूर्ण है: भारत की आपराधिक न्याय प्रणाली में, हत्या और बलात्कार सहित सभी गंभीर अपराधों में बरी होने की दर उच्च है, जिसका कारण जांच और अभियोजन में संरचनात्मक विफलताएं हैं जिनका शिकायतों की सत्यता से कोई लेना-देना नहीं है।[23]

स्मृति शर्मा (2013) द्वारा किए गए अनुभवजन्य शोध एक प्रतिवाद प्रस्तुत करते हैं: जाति-आधारित अपराधों की घटनाएँ उच्च जातियों की तुलना में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदायों की आर्थिक स्थिति में सुधार के साथ सकारात्मक रूप से सहसंबंधित हैं, जो इस परिकल्पना के अनुरूप है कि अत्याचार निम्न जाति की बढ़ती आकांक्षाओं के विरुद्ध प्रमुख जाति के प्रतिशोध के कृत्य हैं, न कि दलित पीड़ितों द्वारा गढ़ी गई शिकायतें।[24] वास्तव में झूठी शिकायतों के लिए उचित उपाय आईपीसी की धारा 182 और 211 के तहत अभियोजन है, न कि दस्तावेजी रूप से संगठित हिंसा का सामना कर रहे

समुदाय के लिए बनाई गई सुरक्षाओं का व्यवस्थित रूप से हनन करना। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं पृथ्वी राज चौहान मामले में पुष्टि की थी, अधिनियम के प्रावधानों को कुछ लोगों द्वारा दुरुपयोग के कारण कमजोर नहीं किया जा सकता है, जब तक कि बहुत से लोगों की वास्तविक सुरक्षा आवश्यकता स्पष्ट बनी हुई है।[25]

- **<u>निष्कर्ष और सिफारिशें</u>**

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989, जिसे 2015 और 2018 में संशोधित किया गया, संरचनात्मक रूप से व्यापक और संवैधानिक रूप से सुदृढ़ है। यह संसद के इस सुविचारित निर्णय को दर्शाता है कि सबसे हाशिए पर पड़े समुदायों की सुरक्षा के लिए सामान्य आपराधिक कानून ढांचे से हटकर सख्त प्रक्रियात्मक प्रावधान, जैसे कि अग्रिम जमानत पर रोक, आवश्यक हैं। इस शोध पत्र में प्रस्तुत शोध परिकल्पनाएँ साक्ष्यों द्वारा पर्याप्त रूप से प्रमाणित होती हैं: अधिनियम अपनी संरचना के कारण नहीं, बल्कि उच्च जाति के हितों से प्रभावित सामाजिक परिवेश में संचालित पुलिसिंग, अभियोजन और न्यायनिर्णय की संस्थागत विफलताओं के कारण कमजोर है।

सुभाष काशीनाथ महाजन प्रकरण ने न्यायिक तर्क के उस जोखिम को उजागर किया जो अत्याचार की दस्तावेजी वास्तविकता के बजाय दुरुपयोग की काल्पनिक आशंकाओं को प्राथमिकता देता है, और 2018 के संशोधन और पृथ्वी राज चौहान मामले के माध्यम से विधायी और न्यायिक सुधार संसदीय इरादे की आवश्यक पुष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। जैसा कि अंबेडकर ने पहले ही अनुमान लगाया था, वर्तमान चुनौती यह है कि सामाजिक सुधार के बिना कानून सुधार एक अधूरी क्रांति है। अधिनियम कानूनी ढांचा प्रदान करता है; इसे एक जीवंत वास्तविकता बनने के लिए संस्थागत प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। निम्नलिखित लक्षित सिफारिशें प्रस्तुत की जाती हैं:

1) विशेष न्यायालयों की वास्तविक विशिष्टता: राज्यों को कानूनी रूप से प्रत्येक जिले में विशेष न्यायालय स्थापित करने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए, जिनमें समर्पित न्यायाधीशों और सहायक कर्मचारियों के साथ पूर्णकालिक रूप से स्टाफ नियुक्त किया जाए, और जो अन्य सभी न्यायिक कार्यों से मुक्त हों।
2) जवाबदेह विशेष अभियोजक: विशेष लोक अभियोजकों का चयन पारदर्शी, योग्यता-आधारित प्रक्रिया के माध्यम से किया जाना चाहिए, जिसमें नागरिक अधिकारों की विशेषज्ञता प्रदर्शित हो और जो राजनीतिक नियुक्ति से मुक्त हो।

[25] Prathvi Raj Chauhan, op. cit., para 18; Acharya & Acharya, op. cit., p. 10.

3) गवाह संरक्षण का संचालन: 2015 संशोधन के पीड़ित और गवाह संरक्षण प्रावधानों को वित्तपोषित और संचालित किया जाना चाहिए, जिसमें प्रतिशोध का सामना कर रहे गवाहों के लिए सुरक्षित घर, पहचान संरक्षण और आर्थिक सहायता शामिल है।
4) धारा 4 का प्रवर्तन: धारा 4 के तहत कर्तव्य की जानबूझकर उपेक्षा करने वाले पुलिस अधिकारियों के अभियोगों को व्यवस्थित रूप से चलाया जाना चाहिए और संसद को वार्षिक रूप से रिपोर्ट किया जाना चाहिए, जिससे कानून प्रवर्तन तंत्र के भीतर वास्तविक जवाबदेही का निर्माण हो सके।
5) अनिवार्य जाति संवेदन: सभी पुलिस, अभियोजन और न्यायिक अधिकारियों को अधिनियम के प्रावधानों पर आवधिक, अनिवार्य प्रशिक्षण से गुजरना होगा, जिसे अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय संगठनों के साथ परामर्श करके तैयार किया गया है।
6) समय पर राहत वितरण: जिला मजिस्ट्रेट नियम 12 के तहत सात दिन के राहत वितरण जनादेश के अनुपालन के लिए सख्त जवाबदेही के अधीन होंगे, और अनुपालन न करने को अनुशासनात्मक अपराध माना जाएगा।

संवैधानिक लोकतंत्र में जातिगत अत्याचारों का निरंतर बने रहना केवल कानून प्रवर्तन की समस्या नहीं है; यह संविधान में वर्णित भारत और सामाजिक वास्तविकता के भारत के बीच की खाई को दर्शाता है। इस अधिनियम का निष्ठापूर्वक कार्यान्वयन इस खाई को पाटने का एक आवश्यक साधन है।

ग्रंथ सूची (Bibliography)

- Acharya, Pranabindu & Prachi Acharya, "An Analysis of the Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989," SSRN Working Paper No. 3732709 (2020).
- Bhartiya, Dr. Neha, "SC/ST (Prevention of Atrocities) Act 1989: Tool for Social Justice or Weapon of Vengeance," International Journal of Development Research, Vol. 8 (2018).
- Choudhury, Madhusmita, "Atrocity Act and Its Awareness Level at Khordha District," NPA Journals (2017).
- Guntaka, Jyothi, "Prevention of Atrocities Act: Boon or Bane," SSRN 2463049 (2014).
- Krishnan, P.S., "Atrocities against Dalits: Retrospect and Prospect," Combat Law, Vol. 8, Issues 5–6 (2009).
- Kumar, Naveen, "A Study about SC & ST Prevention of Atrocities Act," Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education, Vol. 16, Issue No. 5 (April 2019).
- National Commission for Scheduled Castes, First Report 2004–05 (New Delhi, 2006).
- National Crime Records Bureau, Crime in India (Annual Reports, various years).
- National Human Rights Commission, Report on Prevention of Atrocities against Scheduled Castes (New Delhi).
- Nawsagaray, Nitish, "Misuse of the Prevention of Atrocities Act," Economic & Political Weekly, Vol. 53, Issue 22 (2 June 2018).
- Sharma, Smriti, "Hate Crimes in India: An Economic Analysis of Violence and Atrocities against SC/ST," Working Paper No. 224, CDE, Delhi School of Economics (2013).
- Prathvi Raj Chauhan v. Union of India, WP (C) No. 1016 of 2018 (Supreme Court, 10 February 2020).
- Subhash Kashinath Mahajan v. State of Maharashtra & Ors., (2018) 6 SCC 454.
- Union of India v. State of Maharashtra, (2018) 6 SCC 454 (Review).
- The Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989 (Act 33 of 1989), and Amendment Acts of 2015 and 2018.